RESEARCH INQUIRY
(An International Peer Reviewed Multidisciplinary Referred Research Journal)
Impact Factor :
ISSN

पर्यावरण के संरक्षण में समाज की भूमिका का समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ0 आशाराम वर्मा
असिस्टेण्ट प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, डी0ए0वी0 पी0जी0 कॉलेज गोरखपुर (उ0प्र0)

सारांश : वर्तमान समय में औद्योगिक विकास, तीव्र तकनीकी प्रगति और बढ़ते मशीनीकरण ने मानव जीवन को सुविधाजनक बनाया है, लेकिन इसके साथ पर्यावरण पर गंभीर दबाव भी बढ़ा है। कारखानों एवं खदानों से निकलने वाला अपशिष्ट, समुद्र में तेल का रिसाव, वाहनों से उत्सर्जित धुआँ तथा विभिन्न प्रकार के प्रदूषक पदार्थ वायुमंडल और प्राकृतिक संसाधनों को लगातार प्रभावित कर रहे हैं। दूसरी ओर, उपभोक्तावादी जीवनशैली ने मनुष्य की आवश्यकताओं को बढ़ाकर प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन को प्रोत्साहित किया है। परिणामस्वरूप मानव और प्रकृति के बीच स्थापित संतुलन धीरे–धीरे कमजोर हुआ है।पर्यावरणीय असंतुलन के कारण आज अनेक गंभीर समस्याएँ सामने आ रही हैं। वैश्विक तापवृद्धि, ओजोन परत का क्षरण, अम्लीय वर्षा, वायु प्रदूषण, बाढ़, सूखा, हिमनदों का पिघलना, समुद्र के जलस्तर में वृद्धि तथा भूस्खलन एवं भूकंप जैसी प्राकृतिक एवं पर्यावरणीय घटनाएँ मानव जीवन के लिए चुनौती बनती जा रही हैं। इन परिस्थितियों से स्पष्ट है कि प्रकृति के संसाधनों का अनियंत्रित और विवेकहीन उपयोग अंततः मानव समाज के लिए ही संकट उत्पन्न कर रहा है। वर्तमान पर्यावरणीय संकट के संदर्भ में मानव और प्रकृति के संबंधों पर नए सिरे से विचार करना आवश्यक हो गया है। केवल विकास की गति बढ़ाना पर्याप्त नहीं है, बल्कि विकास की प्रक्रिया को पर्यावरण–संतुलित, टिकाऊ और उत्तरदायी बनाना भी जरूरी है। प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण, प्रदूषण नियंत्रण, ऊर्जा के विवेकपूर्ण उपयोग तथा पर्यावरण के प्रति जन–जागरूकता को विकास की प्राथमिकताओं में शामिल करना होगा। अतः आज मानव के सामने सबसे महत्वपूर्ण दायित्व यह है कि वह प्रकृति के साथ संघर्ष के बजाय सह–अस्तित्व का मार्ग अपनाए। पर्यावरण संरक्षण को केवल सरकारी प्रयासों तक सीमित न रखकर व्यक्तिगत, सामाजिक और संस्थागत स्तर पर सामूहिक जिम्मेदारी के रूप में स्वीकार करना होगा। प्रकृति और मानव के बीच संतुलित एवं सहजीवी संबंध स्थापित करके ही वर्तमान तथा भावी पीढ़ियों के लिए सुरक्षित, स्वस्थ और सतत जीवन सुनिश्चित किया जा सकता है।

प्रमुख शब्द : तकनीकीकरण, पर्यावरणीय आपदा, अम्ल वर्षा, प्राकृतिक प्रदूषण।

भूमिका

प्रकृति और मानव का संबंध अत्यंत प्राचीन, घनिष्ठ एवं परस्पर निर्भरता पर आधारित है। पृथ्वी पर उपलब्ध पेड़–पौधे, जीव–जंतु, जल, वायु, मिट्टी तथा अन्य प्राकृतिक घटक एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं और इनके बीच निरंतर पारिस्थितिक अंतःक्रिया होती रहती है। जलचक्र, कार्बन चक्र, नाइट्रोजन चक्र, ऑक्सीजन चक्र तथा विभिन्न खनिज चक्र प्रकृति में आवश्यक तत्वों के संतुलित आवागमन को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसी प्राकृतिक व्यवस्था के कारण जीव–जगत और पर्यावरण के बीच संतुलन बना रहता है। प्रकृति में विभिन्न जीवों की भूमिकाएँ अलग–अलग होते हुए भी एक–दूसरे से संबंधित हैं। वनस्पतियाँ अनेक जीवों को भोजन एवं आश्रय प्रदान करती हैं तथा पक्षियों और कीटों के परागण में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। अनेक जीव बीजों के प्रसार में सहायता करते हैं, जिससे वनस्पतियों का पुनर्विकास संभव होता है। इसी प्रकार मृत जीव–जंतुओं और जैविक पदार्थों को विघटित करने वाले सूक्ष्मजीव एवं कवक पोषक तत्वों को पुनः मिट्टी और प्रकृति में उपलब्ध कराते हैं। इस प्रकार अपघटक प्रकृति के पदार्थों के पुनर्चक्रण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और पारिस्थितिक तंत्र की निरंतरता बनाए रखते हैं। खाद्य–श्रृंखला और खाद्य–जाल भी प्रकृति के संतुलन को बनाए रखने वाले महत्वपूर्ण तंत्र हैं। किसी एक जीव की संख्या में अत्यधिक वृद्धि या कमी का प्रभाव दूसरे जीवों पर भी पड़ता है। उदाहरण के लिए, कौए, चील, गिद्ध तथा अन्य जीव मृत जीवों को भोजन के रूप में ग्रहण करके प्राकृतिक स्वच्छता बनाए रखने में योगदान देते हैं। इसी तरह जीवाणु और कवक मृत जैविक पदार्थों को विघटित करके उनके पोषक एवं खनिज तत्वों को पुनः पर्यावरण में लौटा देते हैं। इन प्रक्रियाओं के माध्यम से प्रकृति अपने संसाधनों का पुनः उपयोग करती रहती है।

मानव सभ्यता के विकास से पहले प्राकृतिक तंत्रों में यह संतुलन अपेक्षाकृत सहज रूप से बना रहता था। चारों ओर स्वच्छ जलस्रोत, हरे–भरे वन, विविध प्रकार की वनस्पतियाँ, पक्षियों का कलरव, झीलें, नदियाँ, पर्वत तथा शुद्ध वायुमंडल प्रकृति की समृद्धि को दर्शाते थे। जीव–जंतुओं का जीवन मुख्यतः प्राकृतिक परिस्थितियों पर निर्भर था और प्रकृति की वहन क्षमता के अनुरूप उनका विकास होता था। किन्तु समय के साथ वैज्ञानिक एवं भौतिक विकास, बढ़ती जनसंख्या, औद्योगीकरण तथा प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन ने इस संतुलन को प्रभावित किया है। वनों की कटाई, जल एवं वायु प्रदूषण, जैव–विविधता में कमी और प्राकृतिक संसाधनों के अनियंत्रित उपयोग ने मानव तथा प्रकृति के संबंधों में असंतुलन उत्पन्न किया है। इसका प्रभाव अंततः जलवायु परिवर्तन और विभिन्न पर्यावरणीय समस्याओं के रूप में दिखाई दे रहा है। अतः वर्तमान समय में आवश्यकता इस बात की है कि मानव प्रकृति को केवल संसाधन मानकर उसका दोहन न करे, बल्कि उसे जीवन–व्यवस्था का अभिन्न अंग समझे। प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग, जैव–विविधता का संरक्षण, वनों की रक्षा तथा पर्यावरण के प्रति जागरूकता के माध्यम से ही मानव और प्रकृति के बीच संतुलित संबंध पुनः स्थापित किया जा सकता है। प्रकृति के संरक्षण के बिना मानव सभ्यता का दीर्घकालिक एवं सुरक्षित विकास संभव नहीं है।

प्राचीन भारत में पर्यावरण एवं समाज

विभिन्न पौराणिक ग्रन्थों में प्राकृतिक प्रदूषण फैलाने वाले दोषी के लिए दण्ड विधान का भी वर्णन मिलता है–यथा मनुस्मृति 4.56 में कहा गया है–''किसी भी व्यक्ति को पानी में पेशाब, मल अथवा थूकना नहीं चाहिए। किसी भी वस्तु को, जो इन अपवित्र वस्तुओं, रक्त और विष से मिश्रित हो, जल में फेंकना नहीं चाहिए। कौटिल्य ने अपनी पुस्तक अर्थशास्त्र में 2.145 पर लिखा है कि व्यक्ति जिसने शहर के अन्दर बिल्ली, कुत्ता, नेवला और साँप जैसे जीव के लोथ अथवा कंकाल को फेंका तो उसे तीन पण का दण्ड दिया गया था। गधा, ऊँट, खच्चर और नरकंकाल फेंकने वाले को पचास पण का जुर्माना दिया गया था। पर्यावरण संरक्षण का एक सुन्दर वर्णन चरक संहिता में भी मिलता है जिसके अनुसार वह जल अधिक प्रदूषित माना जाना चाहिए जो गन्ध, रंग, स्वाद तथा स्पर्श में विकृत हो, चिपचिपा हो, पशु–पक्षियों द्वारा परित्यक्त हो तथा आनन्द रहित हो। चाणक्य ने अपनी पुस्तक अर्थशास्त्र में जीव हत्या करने वालों के लिए कठोर दण्ड का विधान किया। इसी प्रकार स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार–''नाना प्रकार के रत्न, धातुओ से जड़ी धरती, विविध प्रकार के वट वृक्ष आदि के बीजों में अति सूक्ष्म रचना, असंख्य हरित, श्वेत, पीत, कृष्ण चित्रमय रूपों से युक्त यह पुरुष, फल, मूल निर्माण, मिस्ट, क्षार, कटु, कषाय, तिक्त, अम्लादि विविध रस, सुगन्धियुक्त पत्र, पुष्प, फल, अन्नकण, मूलादि की रचना अनेकानेक करोड़ों भूगोल, सूर्य, चन्दरादि लोक निर्माण, धारण, भ्रमण के नियमों की रचना आदि परमेश्वर के बिना कोई नहीं कर सकता।'' इस प्रकार परमात्मा की इस सृष्टि एवं कृतियों का आनन्द तभी प्राप्त किया जा सकता है जब मानव अपने को प्रकृति के अनुकूल एवं सुयोग्य बना ले।

वैदिक कालीन ब्राह्मण ग्रन्थों में एक स्थान पर कहा गया है कि 'मां हिंस्यात् सर्वभूतानि' अर्थात जीव हिंसा मत करो। इसी प्रकार आर्य समाज के अनुयायी पर्यावरण की शुद्धिकरण के लिए प्रातःकालीन एवं संध्याकालीन यज्ञ पर बल देते हैं और अन्त में निम्नलिखित शांति पाठ किया जाता है, जो उनके प्रकृति प्रेम एवं उसके पल्लवन एवं पुष्पन की आकांक्षा का संकेतक है। यथा–

द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वदेवः शान्तिर्ब्रह्म शान्ति सर्व शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधिः।।
शान्तिः। शान्तिः।। शान्तिः।।।

वाराह पुराण, 172.39 में उल्लिखित एक मंत्र के अनुसार जो व्यक्ति अपने जीवन में एक पीपल, एक नीम, एक बड़ लगाये, दस फूल वाले वृक्षों और लताओं का रोपड़ करे, अनार, नारंगी, और आम के दो–दो वृक्ष लगाए, वह कभी नरक में नहीं जाता। पर्यावरण की महत्ता को विभिन्न धर्मो और विचारधाराओं में भी रेखांकित किया गया है विभिन्न धर्मो में करुणा एवं मैत्री पर बल दिया गया है। सभी धर्म लगभग यही संदेश देते हैं।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत।

सभी धर्मों ने प्रकृति को हानि पहुँचाने का पुरजोर विरोध किया है। हिन्दू धर्म में ष्तदनुभूति एवं सभी जीवों के प्रति अनुकंपा दो महत्वपूर्ण तत्व माने गये हैं। इन दोनों से प्रभावित होकर मानव अपने पर्यावरण नीति का निर्माण करता है साथ ही वैदिक काल से ही सूर्य, अग्नि, जल, वायु, वृक्ष, नाग एवं विभिन्न पशु–पक्षियों के अतिरिक्त विभिन्न वृक्षों एवं वनस्पतियों–यथा पीपल, बरगद, आम, तुलसी आदि की पूजा–अर्चना एवं संरक्षण करता रहा है। सूर्य को देवता माना गया– 'सूर्य देवाभवः'। साथ ही प्रातः काल सूर्योपासना का विधान किया गया है कि "नः सूर्यस्य संदृशे मा युयोधा।" इसके अतिरिक्त यदि प्राचीन भारतीय परम्परा पर दृष्टिपात करें तो स्पष्ट होता है कि यहाँ पर्वतों, नदियों, वनों एवं पशुओं को बहुत महत्व दिया जाता है। हिन्दू धर्म एवं आदिवासी संस्कृतियों में भी वनों को वनदेवों एवं वनदेवियों से सम्बद्ध माना जाता है। पौधों की विशेष प्रजातियों की 'वृक्षदेवियाँ' होती हैं। पीपल की पूजा की जाती है और उसे काटने पर प्रतिबन्ध है। कुछ क्षेत्रों जैसे महाराष्ट्र में बरगद के पेड़ की पूजा होती है और साल में एक बार उसके चारों ओर धागा लपेटकर उसे सम्मान दिया जाता है। तुलसी का पौधा हर घर में लगाया जाता है। विभिन्न भारतीय संस्कृतियों में, खासकर आदिवासी क्षेत्रों में वनों के हिस्से को, जो अब 'पवित्र कुंज' कहलाते हैं, किसी देवता को समर्पित कर दिया जाता है। वनों के संरक्षित ये भाग अप्रभावित वनस्पतियों की सच्ची प्रकृति को दर्शाते हैं तथा उनमें बड़ी संख्या में देसी पौधों की प्रजातियाँ पायी जाती हैं क्योंकि स्थानीय लोग उनके उपयोग पर कड़ा नियन्त्रण रखते हैं।

वृक्षों की कुछ प्रजातियों को उनके फल–फूल के महत्व के कारण संरक्षित रखा गया है। लकड़ी जब दुर्लभ हो जाती है तब भी खेतों के आस–पास आम के वृक्ष उनके फलों के लिए बचाकर रखे जाते हैं। आदिवासी जनता महुआ के वृक्ष को बचाकर रखती है क्योंकि इससे खाने योग्य फूल, बीजों से तेल और कच्ची शराब मिलती है। भारतीय चिकित्सा विज्ञान में अनेक पौद्दों, झाड़ियों का उपयोग किया जाता था जो कभी निर्जन में बड़ी संख्या में पाये जाते थे। अब ये तेजी से लुप्त होते जा रहे है। पशुओं की अनेक प्रजातियों को देवी–देवताओं का 'वाहन' माना जाता है। जिन पर वे ब्रह्माण्ड की यात्रा करते है भारतीय पुराणों में हाथी का सम्बन्ध गणेश जी से माना जाता है। गजानन गणेश का सम्बन्ध मूषक से भी है। कलहंस का ब्रह्मा से, मोर का कार्तिकेय से, उलूक का महालक्ष्मी से, गिद्ध का शनि देवता से, चीते का कात्यायनी से, कुत्ते का भैरव से एवं गधे का शीतला देवी से सम्बन्ध माना जाता है। विष्णु का सम्बन्ध गरुड़ से है। राम एवं बन्दरों में घनिष्ठ सम्बन्ध माना जाता है। सूर्य देव की सवारी घोड़ा है। सिंह का सम्बन्ध दुर्गा से और काले हिरन का चन्द्रमा से है। गाय का सम्बन्ध कृष्ण से सर्प का शिव और विष्णु से तथा हंस का सरस्वती से है। विष्णु के अनेक पशु अवतार बताये गये हैं; ये क्रम से मत्स्यावतार, कच्छप अवतार, वामन अवतार और नरसिंह अवतार हैं। जिन विभिन्न पौधों का धार्मिक महत्व माना गया है। उसमें तुलसी भी है जिसका सम्बन्ध लक्ष्मी ओर कृष्ण से है। तुलसी के पौधे का सम्बन्ध पितरों की पूजा से भी है। बरगद का सम्बन्ध विष्णु और कृष्ण से माना जाता है। आमलकी और आम समेत अनेंक अन्य वृक्षों और तुलसी की झाड़ी का सम्बन्ध देवी लक्ष्मी से माना जाता है। इसी प्रकार बेल वृक्ष का सम्बन्ध भगवान शिव से, अशोक का इन्द्र से, तमाल व कदम्ब का श्रीकृष्ण से, नीम का शीतला एवं मंशा देवी से, पलाश का ब्रह्मा एवं गंधर्व से, महुआ एवं सेमल का प्रयोग शुभ कार्यों में होता है। परम्परा यह भी कहती है कि ये प्रजातियाँ जिनको प्रकृति का एक महत्वपूर्ण पक्ष माना जाता है, स्थानीय जीवन प्रणालियों की आधार और एक सामंजस्यपूर्ण जीवन का अभिन्न अंग थी। अतीत के परम्परागत समाजों में ये सभी मिसालें उन नैतिक मूल्यों के अंग थी जो प्रकृति का संरक्षण करते थे।

विभिन्न धर्मों में पर्यावरण एवं समाज

जैन धर्म के सस्थापक वर्द्धमान महावीर स्वामी दूसरों के लिए बने भोजन में से बचे भाग को ही ग्रहण करते थे जिससे कि उनके द्वारा पेड़–पौधों को किसी प्रकार की हानि न हो सके। इस धर्म में मांसाहार पूर्णतः वर्जित था। इनके अनुयाइयों को स्पष्ट निर्देश था कि अपने रास्ते को साफ करके चलना चाहिए, जिससे कि प्राणी मात्र को किसी भी प्रकार की हानि न पहुँचे। 'अहिंसा परमोधर्मः' की संकल्पना ने प्रकृति की रक्षा एंव पर्यावरण संरक्षण का कार्य किया। बौद्ध धर्म के अनुयायी 2001 की जनगणना के अनुसार विश्व में 6 प्रतिशत है। भारतीय सस्कारों के प्रभावस्वरूप पर्यावरणीय प्रबन्धन और

मनुष्य की आवश्यकता के अनुकूल ही प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग इस धर्म के अनुयाइयों ने करने को महत्व दिया है। सादगी और अहिंसा को मानने वाले बौद्ध धर्मी लोगों ने ष्बुरे काम करना बन्द करो; अच्छे काम करने का प्रयास करो, के अन्तर्गत सभी प्रकृति अनूकूल कार्य करना स्वीकार किया है। वृक्ष लगाना और इसकी रक्षा करना तथा किसी पर अत्याचार न करना इस धर्म की विशिष्टताएं रही हैं।

बौद्ध धर्म के प्रमुख नैतिक तत्व हैं–जीव हत्या, चोरी करने, झूठ बोलने तथा नशा करने से परहेज। इसके अतिरिक्त इस धर्म को मानने वाले जीवन ओर सम्पत्ति के प्रति आदर का भाव रखते थे। इन्हीं तत्वों के आधार पर यह धर्म जीवन के महत्व को स्वीकार करता है तथा व्यक्तिगत सुख के लिए जीव हत्या की आलोचना करता है। महात्मा बुद्ध को वट वृक्ष के नीचे ही ज्ञान की प्राप्ति हुई। इस प्रकार यह धर्म प्रकृति के अत्यन्त समीप था तथा प्राकृतिक सम्पदा को हानि पहुँचाने वालों के लिए दण्ड का प्राक्धान किया।

सिख धर्म एवं उसका दर्शन गहराई से प्रकृति से जुड़ा है और इसी कारण इस धर्म के प्रवर्तक गुरुनानक ने प्रकृति को दैविक मान्यता दी है। गुरुग्रन्थसाहिब में लिखा गया है कि सिख धर्म, दुनिया की सभी वस्तुओं से ऊपर प्राकृतिक नियम, पशु और पक्षी, मौसम वन–वनस्पति और वन्य जीव को महत्व देता है; इन सब के ऊपर सृष्टि रचयिता प्रमुख हैं। उनके अनुसार ईश्वर स्वयं पर्यावरण में निहित है। सिख धर्म वायु, जल, पृथ्वी, दिन व रात को अधिक महत्व देकर अपने पर्यावरणीय दृष्टिकोण की प्रभावी भूमिका को प्रस्तुत करता है। इनके अनुसार ष्ये तत्व मनुष्य जाति की शांति, प्रसन्नता, निश्छलता एंव विकास के लिए आवश्यक हैं। ऐसा कोई क्षण नहीं होता जबकि मनुष्य और प्रकृति के मध्य कोई अलगाव सम्भव हो। प्रकृति और मनुष्य जाति के मध्य संतुलन सृष्टि का अविभाज्य अंग है। प्रकृति संतुलन के लिए यह धर्म चेतावनी स्वरूप कहता है कि अतः चेतावनी स्पष्ट हैः संतुलन को बिगाड़िये और व्यवस्था अस्त–व्यस्त हो जायेगी। ईश्वर के सम्पूर्ण पारिस्थितिकीय संतुलन के बिना समस्त पारिस्थितिकीय उथल–पुथल हो जायेगी। इसके साथ ही गुरुग्रन्थ साहिब में अनेक स्थानों पर पौधे और वनस्पति, पशु और पक्षी तथा वर्षा और ऋतुओं का वर्णन मिलता है जो निश्चित ही पर्यावरण की महत्ता और सुरक्षा के लिए है।

इस्लाम धर्म में भी जीव हत्या का विरोध किया गया तथा इंसान से पेड़–पौधों की रक्षा करने का आग्रह किया गया है। इसमें कहा गया है– 'फल देने वाले वृक्षों को, फसलों को तथा जानवरों को तबाह मत करो।' 'कुरान शरीफ' भी जीव और ईश्वर में प्रेम प्रतिपादन करती है। यह धर्म स्वर्ग में अलौकिक छटा का वर्णन करती है। पैगम्बर हजरत मुहम्मद साहब खजूर के वृक्ष के नीचे बैठकर अपने शिष्यों को शिक्षा दिया करते थे। इन्होंने स्वयं कहा है कि खुदा सौन्दर्य का प्रतीक है। इस संदेश का पालन मुस्लिम बादशाहों ने भी किया। जहाँ अकबर ने प्रकृति की सुरक्षा में अनेक कदम उठाये, वहीं शाहजहाँ ने मोर पक्षियों की हत्या करने वाले शिकारियों के हाथ काटने का फरमान जारी किया था। वनस्पति, वन्य जीव और जंगलो की रक्षा हेतु कई जगह इस्लाम की पुस्तकों में बहुत स्पष्ट उल्लेख मिलता है। प्राकृतिक संसाधनों में वायु और जल को प्रधानता और सम्भावित प्रदूषण की भी सम्भावना व्यक्त की गयी है। इस्लाम में जल को व्यक्ति के पवित्र करने का एक मात्र साधन माना जाता है और खुदा की इबादत के साथ यह कहा जाता है कि अल्लाह की प्रशंसा करनी चाहिए कि उन्होंने इस्लाम और उसकी इबादतें हमें दी। अल्लाह की प्रशंसा करनी चाहिए जिसनें हमें पवित्र करने के लिए जल बनाया और प्रकाश देने हेतु इस्लाम।

पर्यावरण के प्रति इनका व्यापक दृष्टिकोण इस बात से भी प्रतीत होता है कि इस्लाम धर्म में भूमि का एक मात्र मालिक खुदा है और उस पर रहने वाले निवासी केवल न्यासी है। प्रकृति उत्पादन की महत्ता के फलस्वरूप यूनानी औषधि पद्धति इस धर्म की ही देन है जिसे ईश्वर ने लोगों की रक्षा करने के लिए ईजाद किया है। इसी प्रकार ईसाई धर्मावलम्बी भी मानते हैं कि भौतिकवादी जीवन व्यवस्था से प्राकृतिक असंतुलन बढ़ता है। ईसा मसीह का संदेश था– 'Live and Let Live' अर्थात 'जिओ और दूसरों को भी जीने दो'। ईसाई धर्म के पूर्व इतिहास 'यहूदी–इसाई आचार संहिता' में प्रकृति को मान्यता दी गयी है किन्तु उसे व्यक्ति के अधीन माना गया है। सम्भवतः यह उनकी पूर्वग्रसित विचारधारा रही हो लेकिन इसके पीछे उनकी जो सोच प्रबल थी उसके अनुसार व्यक्ति मूलतः पृथ्वी के अन्य जीवों से

भिन्न है, जिन पर उनका प्रभुत्त रहता है। व्यक्ति स्वयं अपनी नियति का मालिक है; वे अपने लक्ष्य चुन सकते हैं और उनको प्राप्त करने के लिए जो भी आवश्यक है, उसे सीख सकते हैं। दुनिया विशाल है, अतः मनुष्य को असीमित अवसर मिलते हैं। मानव जाति का इतिहास प्रगति का रहा है; हर समस्या का कोई समाधान है, अतः प्रगति अथवा उन्नति की आवश्यकता कभी समाप्त नहीं होती आदि का उल्लेख किया गया है।

शायद इसी कारण से ईसाई धर्मावलम्बी मानते है कि पृथ्वी और आकाश के मध्य प्राकृतिक संसाधन और ऊर्जा मनुष्य के उपयोग के लिए बने हैं। कुछ प्राकृतिक संसाधन अनन्त हैं उनका खुल कर उपयोग करें, और जो सीमित हैं, उनके समाप्त होने पर उनके विकल्प विज्ञान और तकनीकी की सहायता से तैयार किये जा सकते हैं। वे मानते हैं कि मानव का प्रकृति पर प्रभुत्त बना रहेगा क्योंकि मानव जाति हर प्रकार से प्रकृति से श्रेष्ठ हैं। प्रकृति की दुनिया वस्तुतः मनुष्य जाति के कल्याण और प्रसन्नता के लिए ही बनी है। किन्तु 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में जब से औद्योगिक क्रान्ति का आरम्भ हुआ, प्राकृतिक उदासीनता ने पश्चिमी देशों के लोगों का जीवन संकटमय बना दिया। परिणामस्वरूप इस धर्म के प्राचीन दृष्टिकोण में धीरे–धीरे परिवर्तन होना आरम्भ हुआ। परिणामतः कुछ विचारधारायें अस्तित्व में आयीं। पर्यावरण का ह्रास जीवन की गुणवत्ता को भी प्रभावित करता है। चाहे हम विश्वास करें या न करें पर्यावरणीय संकट हमारे जीवन के सभी क्षेत्र, हमारे सामाजिक सम्बन्ध, हमारा स्वास्थ्य, हमारे आचरण, अर्थव्यवस्था, राजनीति, हमारी संस्कृति और हमारे भविष्य को प्रभावित करता है। मानव नियति पर्यावरण से बहुत निकट से जुड़ी है और उससे प्रभावित है। हम अब मनुष्य के प्रकृति से ऊपर होने की बात कहने में समर्थ नहीं हैं। प्रकृति की समाप्ति प्राणी प्रजाति की समाप्ति है। इस संदर्भ में मनुष्य और प्रकृति दोनों की नियति एक दूसरे की समापक है।

इसी प्रकार पर्यावरण के संदर्भ में विश्व स्तर पर यह माना गया है कि पारसी धर्म ने अपने प्रारम्भ से ही लोगों को पर्यावरण संरक्षण की शिक्षा दी है। पारसी धर्मग्रन्थों में 6 वस्तुओं यथा– पशु, अग्नि, खनिज, पृथ्वी, जल और वनस्पति का वर्णन मिलता है जिनकी वह किसी रूप में मान्यता देते हैं और उनकी पूजा करते हैं। उपर्युक्त तत्वों में भी वे अग्नि को प्रधानता देते हैं। प्रकृति के संदर्भ में इस धर्म की मान्यता है कि प्रकृति संवेदनशील और विनाशकारी दोनों है; साथ ही असामान्य तौर से शक्तिशाली और लचीली भी। हमारे ग्रह के लिए हमारी भूमिका इसे किसी भी प्रकार के और प्रदूषण से बचाना है। पवित्रता को श्रेष्ठतम् मानने वाले पारसी धर्मावलम्बी प्रकृति के किसी भी संसाधन की अपवित्रता को किसी भी स्तर पर सहन करने के लिए तैयार नहीं है। यहाँ तक कि जल में लाश प्रवाहित करने को भी जघन्य अपराध की श्रेणी में रखते हैं।इस प्रकार वैदिक धर्म से लेकर पारसी धर्म तक सभी धर्म प्रकृति एवं पर्यावरण के महत्व को रेखांकित करते हैं।

निष्कर्ष

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि प्राचीन काल के धार्मिक ग्रन्थों, सस्कारो, सामाजिक संस्थाओं में पर्यावरण के सम्बन्ध में पर्याप्त उल्लेख मिलता है। इन सबका प्रभाव स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात निर्मित हो रहे भारतीय सविंधान पर भी पड़ा। भारतीय संविधान दुनिया का प्रथम संविधान है जिसमें पर्यावरण संरक्षण के लिए विशिष्ट प्रावधान किये गये हैं। भारतीय संविधान की उद्देशिका में पर्यावरण के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष रूप से यद्यपि कुछ भी नहीं कहा गया है तथापि जिस समाजवादी राज्य की बात कही गयी है वह तभी सम्भव है जब सभी का जीवन स्तर ऊँचा हो और सभी का जीवन स्तर केवल स्वच्छ पर्यावरण में ही सम्भव है। उद्देशिका के अतिरिक्त संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण के सम्बन्ध में उचित प्रावधान किये गये हैं। 42 वें संविधान संशेधन 1976 से पूर्व भारतीय संविधान में मात्र एक अनुच्छेद (अनुच्छेद–47) था जो पर्यावरण के सम्बन्ध में अग्रांकित निर्देश देता था–राज्य अपने लोगों के पोषाहार स्तर और जीवन स्तर को ऊँचा करने और लोक स्वास्थ्य के सुधार को अपने प्राथमिक कर्तव्यों में मानेगा और राज्य विशिष्टतया मादक पेयों और स्वास्थ्य के लिए हानिकर औषधियों के औषधीय प्रयोजनों से भिन्न, उपभोग का प्रतिषेध करने का प्रयास करेगा। शब्दों की आत्मा इस बात को उद्घाटित करती है कि स्वास्थ्य के सुधार के लिए प्रदूषण से मुक्त पर्यावरण तो होना ही

चाहिए। आत्मा अपनी जगह है और स्पष्ट आदेशात्मक शब्द अपनी जगह। प्रच्छन्न शब्दों से काम नहीं चलता सब कुछ खुलासा होना चाहिए।

सन्दर्भ

1. मुखर्जी, पी0के0: वृहद अपराध विधियाँ, लखनऊः माडर्न पब्लिशर्स (इण्डिया) माडर्न ला हाउस।
2. ओझा, एस0 के0: पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण, इलाहाबाद : बौद्धिक प्रकाशन, 2007.
3. शर्मा, आर0ए0 : पर्यावरण शिक्षा, मेरठ : आर0 लाल बुक डिपो, 2007.
4. पाण्डेय, के0पी0, भारद्वाज ए0 एवं पाण्डेय ए0 : पर्यावरण शिक्षा एवं भारतीय संदर्भ, वाराणसी विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2005.
5. गोयल, एम0के0 : पर्यावरण अध्ययन, आगरा : विनोद पुस्तक मन्दिर, 2005/2006.
6. मिश्रा, एल0एस0 : निबन्ध संग्रह, इलाहाबाद : ग्लोबल विजन।
7. सिंह, डी0 : पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण, इलाहाबाद : ज्ञान भारती पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 2002.
8. सिंह, सी0पी0 : पर्यावरण विधि, इलाहाबाद : इलाहाबाद लॉ एजेन्सी पब्लिकेशन्स, 2007.
9. पाण्डेय, आर0एस0 एवं मिश्र के0एस0 : भारतीय शिक्षा की समसामयिक समस्याएं, आगराः विनोद पुस्तक मन्दिर।
10. गुप्ता, एस0पी0 : आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन, इलाहाबाद : शारदा पुस्तक भवन, 2003.
11. वर्मा, डॉ0 मनीराम 2007, मीमांसा, गुवाँव (पालीपट्टी), चाँदपुर, टाण्डा, अम्बेडकरनगर।
12. वर्मा, डॉ0 मनीराम 2008, मुमुक्षु, गुवाँव (पालीपट्टी), चाँदपुर, टाण्डा, अम्बेडकरनगर।
13. यूनेस्को 1998, हायर एजूकेशन इन द 21 सेंचुरी : वीजन एण्ड मिशन।

❐❐❐